भाकृअनुप
ICAR

पशुओं में सर्रा रोग

IVRI
2013

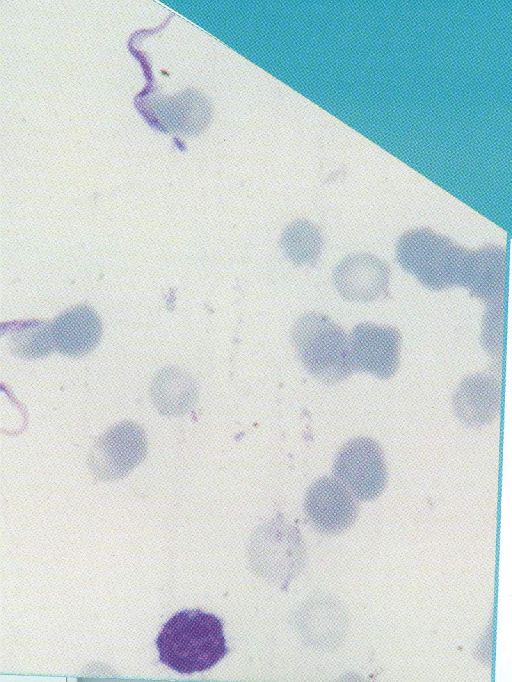

पशुओं में सर्रा रोग

ऐसा अनुमान लगाया गया है कि पिछले कुछ दशकों में विश्व के मौसम में होने वाले बदलाव के कारण पशुओं व मनुष्यों तथा रोगाणुओं के बीच होने वाली पारस्परिक प्रक्रिया पर भी इसका प्रभाव पड़ा है। सन्धिपाद जनक रोगों की व्यापकता उष्ण जलवायु वाले भागों से लेकर शीतोष्ण व शीत जलवायु वाले भागों तक देखी गयी है। बदलती जलवायु में विशेष रूप से गर्मी एवं नमी में बदलाव के कारण ऐसे सन्धिपाद जनित रोगों पर विशेष प्रभाव देखा गया है क्योंकि तापमान एवं आद्रता में बदलाव के साथ ही ऐसे सन्धिपाद जीवों के जीवन के विकास एवं फैलाव पर भी प्रभाव पड़ा है। जिस कारण इन सन्धिपादों से फैलने वाली बीमारियों की व्यापकता पर भी असर पड़ा है। जिस किसी विशेष जलवायु प्रदेश में पहले कभी ऐसे सन्धिपाद जनित रोग को नहीं देखा गया था अब उन जगहों पर भी ऐसे रोग पाये जाने लगे हैं। क्योंकि मौसम के बदलाव के कारण ऐसी जगहों पर भी ये सन्धिपाद पहुँच गये हैं और उन्होंने वहाँ की जलवायु के अनुरूप अपने को ढाल लिया है। पशुओं में होने वाला ट्रिपैनोसोमता (सर्रा) रोग भी एक सन्धिपाद जनक रोग है। ट्रिपैनोसोमता (सर्रा) पशुओं में होने वाला एक घातक रोग है जो ट्रिपैनोसोमा इवांसाई नामक सूक्ष्म परजीवी से होता है। ट्रिपैनोसोमा इवांसाई द्वारा होने वाली बीमारी को भारत में भिन्न-भिन्न नामों से जैसे कि सर्रा, सुर्रा, सरगया, सरिया, तिबरसा, मक्खी की बीमारी, सड़ा से जाना जाता है। भारत में यह रोग सर्वत्र पाया जाता है तथा आमतौर पर यह रोग बरसात में या उसके बाद फैलता है क्योंकि इन्हीं दिनों इस रोग को फैलाने वाली मक्खियाँ टैबेनस (डांस) अधिक संख्या में पाई जाती हैं। यह मक्खी संक्रमित पशु का रक्त चूसते समय संक्रमण को ग्रहण करके किसी स्वस्थ पशु को काटती है तो उस स्वस्थ पशु को इस रोग के परजीवियों से संक्रमित कर देती है।

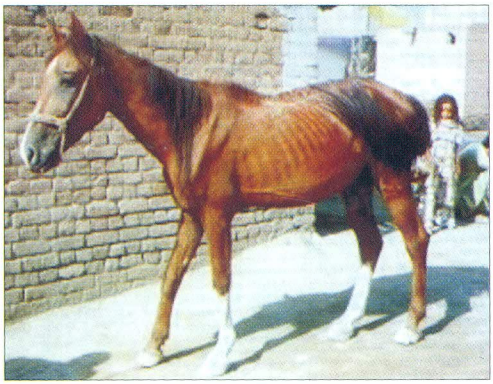

संक्रमण

यह रोग मुख्य रूप से टैबेनस (डांस) मक्खी के काटने से फैलता है। जब यह मक्खी संक्रमित पशु को काटने के बाद स्वस्थ पशु को काटती है तो स्वस्थ पशु संक्रमित हो जाता है। कभी-कभी संक्रमित पशु को लगाये गये इन्जेक्शन की सुई द्वारा भी यह रोग स्वस्थ पशु में फैल जाता है। रक्त चूसने वाली अन्य मक्खियाँ जैसे स्टोमौक्सिस कैल्सिट्रान (अस्तबल की मक्खी) के द्वारा भी यह रोग फैल सकता है।

रोग के लक्षण

इस बीमारी से मुख्य रूप से प्रभावित होने वाले पशु घोड़ा, खच्चर, ऊँट, कुत्ता, गोवंशीय पशु तथा भैंस हैं। पशुओं में इस रोग के लक्षण पशु की प्रजाति व परजीवी के विभेद की उग्रता पर निर्भर करते हैं। घोडों में इस रोग के सर्वमान्य लक्षण पाये जाते हैं। रोग लगने के कुछ दिन बाद पशु को तेज बुखार आता है जो बाद में रूक-रूक कर आने लगता है। पशु खाना खाता रहता है परन्तु उसका शरीर कमजोर होता चला जाता है। शरीर में खून की कमी हो जाती है जिससे उसकी सभी शलेष्मिक झिल्लियों में पीलापन आ जाता है। इसके बाद शरीर के निचले भागों में जैसे कि पैर, धड व उदर में सूजन आ जाती है। जानवर मन्द व सुस्त हो जाता है तथा लडखड़ा कर चलने लगता है और कभी-कभी अपंगता भी विकसित हो जाती है। यदि पशु का इलाज न किया जाये तो यह रोग सदा ही प्राण घातक सिद्ध होता है। सूक्ष्मजीव के विभेद की उग्रता के अनुसार पशु की मृत्यु कुछ दिन से कुछ माह के अन्दर हो जाती है। ऊँटों में यह रोग चिरकालिक होता है। पशु कमजोर व वृशकाय हो जाता है। कभी-कभी यह रोग 3 साल तक चलता रहता है। इसलिये इसे तिबरसा रोग भी कहते हैं। कुत्तों में यह रोग बहुधा तीव्र व प्राणघातक होता है तथा मृत्यु सम्भवत: 2-4 सप्ताह में हो जाती है। आँखों की पुतली पर सूजन तथा सफेदी आ जाती है। स्वर यंत्र में सूजन के कारण आवाज में परिवर्तन हो जाता है तथा ऐसा लगने लगता है कि कुत्ता पागल हो गया है। गाय व भैंसों में यह रोग घोडों जितना तीव्र नहीं होता परन्तु पशु प्राय: इस रोग के परजीवियों को छिपाये रखते हैं। अन्य पशुओं जैसे कि घोडों, ऊँट व कुत्तों के लिये वाहक का कार्य करते हैं तथा इनके लिये संक्रमण का मुख्य स्रोत माने जाते हैं। जानवर के तनाव, काम के दबाव, मौसम की विपरीत परिस्थिति, टीकाकरण या अन्य किसी संक्रमण जैसे खुरपका मुँहपका रोग के कारण यह रोग अचानक प्रकट हो जाता है तथा रोग तीव्र रूप धारण कर लेता है। जिसके फलस्वरूप जानवर की शीघ्र ही मृत्यु हो जाती है। रोग की अतितीव्र परिस्थिति में पशु सर्रा के सामान्य लक्षण प्रकट नहीं करता। वो सिर पटकता है, पैर पटकता है, चक्कर काटता है तथा किसी स्थिर वस्तु से सिर टकराता है। उत्तेजित होकर फिर शांत हो जाता है ऐसा कर-करके थक जाता है और जानवर की कुछ घंटों बाद मृत्यु हो सकती है। रोग की पुरानी अवस्था में जानवर कमजोर हो जाता है तथा कई दिनों तक वह बीमार रहता है। रोग फैलने पर प्रतिवर्ष हजारों की संख्या में पशु मर जाते हैं, जिससे पशु मालिकों तथा देश की बहुत हानि होती है।

निदान

इस रोग की जाँच के लिए पशुपालन विभाग की नैदानिक प्रयोगशालाओं या फिर भारतीय पशु चिकित्सा अनुसंधान संस्थान के रोग शोध निदान केन्द्र में रक्त की पट्टिका भेजकर करायी जा सकती है।

उपचार

इस रोग के उपचार के लिये कुछ औषधियाँ जैसे कि ऐन्ट्रीसाइड सल्फेट, ऐन्ट्रीसाइड प्रोसाल्ट, सुरामिन, बैरेनिल, सेमोरिन तथा साइमेलारसन हैं। सेमोरिन "सर्रा" के उपचार में पसंदीदा दवा नहीं मानी जाती है तथा साइमेलारसन भारत में अभी उपलब्ध नहीं है। जानवर के बीमार होने पर पशु चिकित्सक से ही उसका उचित निदान व उपचार कराना चाहिए। इस रोग का उचित निदान कराकर ही इस रोग के उपचार में काम आने वाली दवाओं का उपयोग करना चाहिये। अनावश्यक रूप से दवाओं का उपयोग करने से परजीवी में औषधियों के लिये प्रतिरोधक क्षमता उत्पन्न होने का डर रहता है इसके अतिरिक्त जानवर के शरीर के वजन के अनुसार औषधि की उपयुक्त मात्रा उपचार में प्रयोग करनी चाहिये क्योंकि औषधि की आवश्यक मात्रा से कम मात्रा देने पर परजीवी में औषधियों के लिये प्रतिरोधकता उत्पन्न हो जाती है।

बचाव व रोकथाम

इस रोग से बचाव के लिये कुछ रोग निरोधक औषधियाँ हैं जिनके उपयोग से जानवर में कुछ महीने तक रोग निरोधक क्षमता बनी रहती है। दूसरी ओर रक्त चूसने वाली मक्खी टैबेनस (डांस) से जानवर का बचाव कर सकते हैं। इसके लिये इन मक्खियों का नियंत्रण करना आवश्यक है।

लेखक:

दिनेश चन्द्र, नवनीत कौर, के०पी० सिंह एवं
ए०के० तिवारी

प्रकाशक:

जलवायु समुत्थानशील कृषि पर राष्ट्रीय पहल
एवं
निदेशक, भारतीय पशु-चिकित्सा अनुसंधान संस्थान, इज्जतनगर-243 122 (उ.प्र.)
के निमित प्रभारी अधिकारी संचार केन्द्र द्वारा प्रकाशित।

मुद्रक:

बाइट्स एण्ड बाइट्स, बरेली। फोन: 94127 38797